23 मार्च शहीदी दिवस पर

भगत सिंह, राजगुरू व सुखदेव को समर्पित

मलविन्दर जीत सिंह वढ़ैच
गाँव व डाकघर सकेतड़ी, जिला पंचकुला 134001
फोन: (0172) 2556314
ईमेल: mjswaraich29@gmail.com

23-24 मार्च 1931 की अंधेरी और सुनसान रात को तीन आजादी प्रेमियों का चोरी-छिपे सतलुज नदी के किनारे सामूहिक अंतिम संस्कार करते हुए बेदर्द जालिमों ने यह सोचा भी नहीं होगा कि जहां हम इन तीनों को हमेशा के लिए अमर कर रहे हैं, वहां अपनी 200 वर्ष पुरानी सल्तनत का भी अंत करने जा रहे हैं और जिसकी अंतिम क्रिया केवल डेढ़ दशक में ही सम्पन्न हो जाएगी।

सुख देव, भगत सिंह व राज गुरू

इनमें पहले जन्म होता है सुख देव का 19 फरवरी 1907 को, लुधियाना शहर के नौघरा मुहल्ले में माता श्रीमती रल्ली देवी व पिता लाला राम लाल थापर के घर में, जो सिर्फ तीन वर्ष की उम्र में ही अपने पिता जी के गुजर जाने के उपरान्त, वे लायलपुर (अब फैसलाबाद, पाकिस्तान) अपने ताया जी, लाला चिन्त राम के पास ही रहे, जहां इनकी मुलाकात भगत सिंह के साथ हुई। भगत सिंह का जन्म सुख देव के जन्म से लगभग 7 महीनों के उपरांत गांव चक्क नं. 105, बंगा, जिला लायलपुर में माता श्रीमती विद्यावती व पिता सरदार किशन सिंह के घर में 28 सितम्बर 1907 को हुआ; और दोनों के बाद शिव राम हरि राज गुरू का जन्म हुआ माता श्रीमती पार्वती बाई व पिता श्री हरी राज गुरू के घर, गांव खैड़ (अब राज गुरू नगर), पूना (महाराष्ट्र) में दिनांक 24 अगस्त 1908 को।

लायलपुर इलाके की निर्जल, किन्तु उपजाऊ धरती हरी-भरी हुई उन्नीसवीं सदी के आखिरी दशक में निकाली गई नहरों से, जिनका निर्माण अंग्रेज हाक्मों ने अपने देश के कारखानों में कपास जैसे कच्चे माल की पूर्ति के मद्देनजर किया था। वहां बड़ी संख्या में किसान अपने परिवारों सहित अपनी पैतृक गांवों की संकीर्ण मालकी से तंग आकर जा बसे, जिनमें गांव खटकड़ कलां, जिला जालन्धर का निवासी सरदार अर्जन सिंह भी शामिल था और उनके साथ उसके बेटे स. किशन सिंह (भगत सिंह के पिता) भी थे। इस निर्जन भूमि ने जहां साम्राज्यी कारखानों की गोद हरी करने में योगदान डाला, वहां साथ ही यह अंग्रेजी हुकूमत का

मलियामेट करने वाली नर्सरी के लिए भी उपजाऊ सिद्ध हुई। 1905 में अंग्रेजी सरकार की बंगाल के बंटवारे के दौरान 'फूट डालो राज करो' की चाल को समझते हुए पहली बार विदेशी साम्राज्य के विरुद्ध देश व्यापी जनतक विरोध की शुरूआत हुई व पंजाब में विदेशी सरकार के विरुद्ध पहली बार लोगों के रोष की शुरूआत हुई 1906-07 के दौरान, जब अंग्रेज हुकूमत ने नव-आबाद जमीनों के अधिकार किसानों से छीन लेने का कानून बनाया था।

इस विद्रोह के केन्द्र बिन्दु, भाव लायलपुर की उपजाऊ धरती में पालन-पोषण हुआ सुख देव और भगत सिंह का। बेशक यह सब कुछ इनके जन्म अथवा होश संभालने से पहले ही घट चुका था, किन्तु इस दौर के संघर्ष के चिन्ह अभी अलोप नहीं हुए थे तथा 'पगड़ी संभाल ओए जट्टा' के गीत की दिल को हिलाने वाली गुंजार अब भी न केवल लोगों के हृदयों पर छाई हुई थी, बल्कि प्रत्येक व्यक्ति की जुबान पर सहजे ही आ जाती थी।

फिर पूना के खेड़ा गांव से शिव राम हरि राज गुरु पहुंच जाते हैं प्रसिद्ध धार्मिक शहर बनारस में गतका मास्टर के रूप में। वास्तव में क्रान्तिकारी पार्टी को दिल्ली में 'ऐक्शन' के लिए एक क्रान्तिकारी साथी की जरूरत थी। किसी भरोसेयोग्य साथी की निशानदेही पर शिव वर्मा जा पहुंचते हैं बनारस में, तथा वहां से बुला लाते हैं शिव राम को अपने डी.ए.वी. कॉलेज के हॉस्टल कानपुर में। यह हॉस्टल भी क्रांतिकारियों का अड्डा था, जहां भगत सिंह, सुख देव व अन्य फरार साथी आश्रय लिया करते थे। फिर क्या था कुछ ही दिनों में पूना के इस 'सतौड़' मेहमान की जैसे धूम ही मच गई। और तो और वह खाना भी रजाई में ही खा लिया करता।

सन् 1929 के आरम्भ में जब आगरा में क्रान्तीय विचार-चर्चा चल रही थी तो एक दिन लगभग सभी साथी एक-दूसरे को मजाक करने लगे व मजाक का विषय था – 'कौन कैसे पकड़ा जाएगा और पकड़े जाने पर क्या करेगा?'

यह हजरत (राज गुरू) तो सोते हुए ही पकड़े जाएगे। इनकी आंख हवालात में ही खुलेगी और यह पहरेदार से पूछेंगे – "क्या मैं सचमुच ही पकड़ा गया हूं या सपना देख रहा हूं!" ...और हुआ भी लगभग ऐसे ही, जनाब 30 सितम्बर 1929 की रात को 3 बजे सोये हुए ही प्लाट नं. 20, तिलक रोड़, पूना से असले समेत गिरफ्तार हुए। हां, जब उनको पहली बार अक्तूबर 1929 को लाहौर के स्पेशल मजिस्ट्रेट के समक्ष पुलिस ने रिमांड लेने के लिए पेश किया, तो मजिस्ट्रेट ने इन्हें देखते ही टिप्पणी की, "नाम तो तुम्हारा राज गुरू है और इल्जाम तुम पर यह है!" "हां, मेरा काम है राजा को शिक्षा देना" जवाब था राज गुरू का।

भगत सिंह किसी सिनेमाघर में पकड़े जाएंगे। पकड़े जाने पर पुलिस वालों को कहेंगे, जी हां यदि हमें पकड़ लिया तो कौन सा गजब हो गया। फिल्म तो पूरी देख लेने दो। ...खैर, उन्होंने तो आत्म स्मपर्ण किया दिल्ली असेंबली में 8.4.1929 को बी.के. दत्त के साथ, किन्तु फिल्म के शौक ने इनको सांडर्स के कत्ल से बिल्कुल पहले भाव 17.12.1928 की पिछली रात 'काकोरी डे' समागम से परतते हुए 'टॉम काका की कुटिया' देखने की इतनी जबरदस्त इच्छा हुई कि इन्होंने अपने साथी भगवान दास माहौर से जबरदस्ती रात के खाने के लिए रखीयां चबन्नीयां (प्रत्येक आदमी एक चबन्नी – 25 पैसे की एक चबन्नी) छीन के सिनेमाघर में जाकर फिल्म की टिकट खरीदी और फिल्म देखने के उपरांत ही रात को नींद आई। बाकी रही बात सुख देव की, पता नहीं किस कारण इनके बारे में कोई ऐसी भविष्यवाणी नहीं की गई थी।

अप्रैल 1929 में क्रान्तिकारी पार्टी ने असेंबली में बम धमाका करके बड़ा 'ऐक्शन' करना था, किन्तु जब राज गुरू को यह पता चला कि भगत सिंह उसके बजाय दत्त को साथ लेकर जा रहा है तो उस 'सतौड़' की जैसे नींद हराम हो गई, क्योंकि सभी साथियों का मत था कि असेंबली ऐक्शन के बाद दोषियों

को फांसी की सजा होगी। राज गुरू को हमेशा ही यह अंदेशा रहता था कि भगत सिंह उससे चालाकी करके पहले फांसी पर चढ़ जाएगा, इसलिए वह दौड़ा-दौड़ा सिफारिश करवाने के लिए आजाद के पास पहुंचा। जब उसको बताया गया कि आत्म स्मर्पण करने के उपरांत अदालती बयान अंग्रेजी में ही देना है, तो राज गुरू ने दलील दी कि मुझे चाहे कितना ही लम्बा बयान अंग्रजी में लिखकर दे दो, मैं उसको तोते की तरह रट्ट लूंगा। किन्तु जब उसकी दौड़-धूप व दलील काम न आई और इसे लगा कि जैसे भगत सिंह इससे बाजी मार गया हो तो वह निराश होकर पूना चला गया। यह अलग बात है कि इससे पहले, भाव 17 दिसम्बर 1928 को सांडर्स कत्ल के ऐक्शन के दौरान, कत्ल की जिम्मेवारी भगत सिंह को सौंपी गई थी तथा राज गुरू को केवल भगत सिंह की रक्षा ही करनी थी, किन्तु यह 'तीव्र पुरुष' गोली चलाने से अपने आप को रोक न सका और देखते ही उसने सांडर्स पर गोली चला दी।

उधर पार्टी, भगत सिंह की कुर्बानी देना नहीं चाहती थी तथा सेंट्रल कमेटी ने भी मीटिंग में ऐसा ही फैसला लिया था। कमेटी की मीटिंग के दौरान सुख देव वहां हाजिर नहीं था, अतएव जब सुख देव को कमेटी द्वारा लिए गए फैसला का पता लगा तो वह तुरन्त दिल्ली पहुंचा व अपने प्यारे मित्र भगत सिंह से तथ्यों सहित तर्क-वितर्क करते हुए उसे मजबूर किया कि वह कमेटी से खुद को भेजे जाने की मोहर लगवाए व हुआ भी ऐसे ही – धन्य है ऐसी मित्रता व धन्य है ऐसा लगाव!

सुख देव का 'आत्मिक' गुण यह था कि वह 'परिवार' के 'कर्ता-धर्ता' की तरह हरेक साथी की छोटी से छोटी जरूरत को हमेशा याद रखता था और उनको पूरा करने के लिए भरसक प्रयास करता था। वह साधन जुटाने व समस्या का समाधान करने का धनी था, जिसका मुख्य उदाहरण यह है – भगत सिंह, राज गुरू और आजाद को सांडर्स के कत्ल के बाद लाहौर से ऐसे बाहर निकाला जैसे मक्खन में से बाल निकालते हैं। पैसे मांगे दुर्गा 'भाभी' सुपत्नी भगवती चरण वोहरा से, तथा 'इस वीरांगना' ने न केवल अपनी बल्कि अपने तीन वर्ष के बेटे की जान की बाजी लगाकर, भगत सिंह की सुपत्नी का नाटक खेलकर 20 दिसम्बर को, राज गुरू समेत गाड़ी पकड़कर लाहौर से निकाला। इस सारी योजना के पोछे सुख देव का ही दिमाग था। उधर आजाद को अपनी माता, धर्म बहन और (पंडित) किशोरी लाल सहित 25 दिसम्बर 1928 को मथुरा भेज दिया। सुख देव के ऊपर जत्थेबंदक तौर पर, लाहौर साजिश केस के जजों ने यह टिप्पणी की थी – **साजिश का 'दिमाग' यही था और भगत सिंह इसके दायें बाजू जैसा था।**

सुख देव की गिरफ्तारी 15 अप्रैल 1929 को लाहौर की कश्मीर बिल्डिंग में स्थित 'बम फैक्टरी' से हुई थी: वहां क्योंकि अल्मारी में एक 'लाईव बम' पड़ा हुआ था। इसने सूझ-बूझ से काम लेते हुए, पुलिस पार्टी को इस बारे में सुचेत कर दिया था।

गिरफ्तारी के बाद जेली जीवन दौरान इन क्रांतिकारियों ने अपने 'कार्यो द्वारा प्रचार' वाली रणनीति अनुसार, राजनैतिक कैदियों के लिए सम्मानजनक सुख-सहुलियतों व उचित व्यवहार के लिए लम्बी भूख-हड़तालें की गई व भयंकर कष्ट खिड़े मत्थे सहन किए। इस दौरान इनका अनमोल साथी, 'बम मास्टर' जतिन दास भूख हड़ताल के 63वें दिन अपनी जान देश पर न्यौछावर कर गया।

उधर जैसा कि पहले ही स्पष्ट दिखाई दे रहा था, 7 अक्तूबर 1930 को बादशाह के विरुद्ध विद्रोह छेड़ने और सांडर्स के कत्ल के लिए भगत सिंह व राज गुरू को प्रमुख रूप से जिम्मेवार मानकर और सुख देव को इस साजिश के 'रचनाकार' के आरोप में फांसी की सजाएं सुनाई गई। अगले चार-पांच महीने कानूनी तथ्यों पर आधारित याचिकों को डालने में बीत गए। **क्रान्तिकारी तो अपनी ओर से किसी प्रकार की अपील दायर करने का सपना तक भी नहीं देखते थे, किन्तु नेक दिल वकीलों ने अपने तौर पर स्पेशल ट्रिब्यूनल की व्यवस्था वाले 'आरडीनैंस' को इस आधार पर चुनौती दी कि ऐसा काला कानून**

सिर्फ अमरजैंसी जैसे हालात (आपात्तकाल स्थिति) में ही लागू किया जा सकता है, जबकि ऐसी स्थिति प्रकट होने का कहीं भी कोई चिन्ह नहीं था।

दूसरी ओर देश में इनकी फांसी को लेकर सरकार तूफान उठने के पहले दिन से ही घबराई हुई थी, जिसका संकेत दिसम्बर 1930 की सरकारी मिस्लों में मिलता है, खासकर पंजाब और पंजाब के शहर लाहौर में तो ऐसा लगता था कि जनता का सैलाब कहीं जेल को ही न ध्वस्त कर दे। इसलिए 17-18 मार्च की रात को पंजाब सरकार के सुझाव पर यह फैसला लिया गया कि इन तीनों को घोषित दिनांक से पहले, भाव 24 मार्च 1931 की बजाय 12 घण्टे पहले ही शहीद करके तथा घोषणा 24 मार्च सवेरे तक नहीं की जाए।

नियमों के अनुसार, फांसी से एक दिन पहले इनके परिवारों को आखिरी मुलाकात, जो कि 23 मार्च को सवेरे होना निश्चित थी भी न हो सकी, क्योंकि जेल अधिकारी केवल 'पहली पीढ़ी' के रिश्तेदारों – भाव मां-बाप, भाई-बहन को ही मुलाकात की स्वीकृति दे रहे थे तथा दूसरे रिश्तेदारों – भाव भगत सिंह की चाचियों, दादा-दादी, सुख देव के पितातुल्य ताया, लाला चिन्त राम जी, आदि, को इस मुलाकात से वंचित रखने पर अंडिग थे। जेल अधिकारियों की इस ज्यादती के विरुद्ध तीनों (भगत सिंह, सुख देव व राज गुरू) के परिवारों ने इस मुलाकात का पूरी तरह बहिष्कार कर दिया। **राज गुरू की माता जी, जो पूना से इसी आशय के लिए चलकर आए थे, उन्होंने ने भी बेटे का आखिरी समय मुंह देखने का संकल्प त्याग दिया।**

इन शहीदों के साथियों की इनके साथ आखिरी मुलाकात दिसम्बर 1930 में ही हो चुकी थी, जब उम्र कैद व कम कैद की सजाओं वाले साथियों को लाहौर जेल से स्थानांतरण करके देश की दूसरी जेलों में भेज दिया गया था। इनके नजदीकी साथी, शिव वर्मा अनुसार, "जेल का बड़ा दरोगा (थानेदार) अपने पूरे दल-बल के साथ हमें लेकर फाटक की ओर चल पड़ा। कुछ दूर चलकर उसने पूछा, 'अपने साथियों को मिलोगे?' हमने इस स्नेह के लिए धन्यवाद दिया और उसने फांसी वाले अहाते का फाटक खुलवाया तथा हमें भगत सिंह, राज गुरू व सुख देव की कोठड़ियों के सामने ले जाकर खड़ा कर दिया। जिन्दगी में ये साथी देखने को नहीं मिलेंगे, इस सोच के साथ हमारे चेहरे उदास थे। उनसे अन्तिम विदाई लेकर जब हम चलने लगे तो हम में से एक साथी, जयदेव कपूर ने भगत सिंह से पूछा, 'सरदार तुम शहीद होने जा रहे हैं; मैं यह जानना चाहता हूं कि तुम्हें इसका अफसोस तो नहीं है?' सवाल सुनकर पहले तो सरदार ठहाका मार के हंसा और फिर गंभीर होकर कहने लगा, **'क्रान्ति के रास्ते पर कदम रखते समय मैंने सोचा था कि यदि मैं अपना जीवन देकर देश के कोने-कोने तक 'इंकलाब जिन्दाबाद' का नारा पहुंचा सकूं तो मैं समझूगा कि मुझे अपने जीवन का मूल्य मिल गया है। आज फांसी की इस कोठरी में लोहे की सलाखों के पीछे भी मैं करोड़ों देशवासियों के मुंहों से गूंजती उस नारे की आवाज सुन सकता हूं। मुझे विश्वास है कि मेरा यह नारा आजादी के संघर्ष की गतिशील शक्ति के रूप में साम्राज्यवादियों पर चोट करता रहेगा।'** फिर कुछ रुककर अपनी स्भाविक मुस्कराहट में उसने कहा, **'इतनी छोटी उम्र का मूल्य और हो भी क्या सकता है?'"**

भगत सिंह के जेल जीवन के दौरान बोघा नामक एक 'सेवक' उनकी कोठरी साफ करता था। उसे भगत सिंह स्नेह से 'बेबे' पुकारा करते थे, जैसे वे अपनी माता जी को बुलाते थे – भाव यह था कि जैसे शिशु अवस्था में मेरी माता जी ने मेरा मल-मूत्र उठाया था उसी तरह अब यह बोघा कर रहा था। 23 मार्च के दोपहर से कुछ समय पहले जेल के दरोगा ने भगत सिंह से पूछा कि आज कोई खास फरमाईश? भगत सिंह ने कहा कि आज 'बेबे' के हाथ की रोटी खाने को मन करता है।" जेलर ने कहा कि अभी गांव को संदेश भजता हूँ। तो भगत सिंह ने टोकते हुए कहा, "नहीं, मेरी 'बेबे' तो यहां पर ही है।" भेद खुला तो

बोघा को भगत सिंह के पास भेजा गया। इस दृश्य को प्रसिद्ध नाटककार दविन्द्र दमन ने अपने शानदार नाटक 'छिपण तो पहलां' पेश किया है:

बोघा: मेरे योग्य कोई सेवा हो तो बताओ।

भगत सिंह: सेवा तो है यदि मानो तो।

बोघा: तू मुहं से तो बोल यदि मेरे करने की हुई, मेरे बस की हुई।

भगत सिंह: अपने हाथ की पकी हुई रोटी खिला दे।

बोघा (उलझन में उसकी की ओर देखता ही रह जाता है और फिर हां में सिर हिलाता है – फिर टोकरी और झाड़ू उठा लेता है। कोठरी के दरवाजे तक जाता है। रुकता है, फिर मुड़कर भगत सिंह की ओर देखता है) आज शाम को जब ड्यूटी पर आऊंगा तो पकाकर ले आऊंगा। (आंखों को पोंछकर चला जाता है और भगत सिंह उसकी ओर देखकर मुस्कराता है)....

किन्तु शायद... शायद... बोघे के ड्यूटी पर आने से पहले ही बोघे का 'सरदार' जा चुका होता है.... सदा के लिए... हमेशा के लिए...।

खुश रहो अहले वतन, हम तो सफर करते हैं...

.....